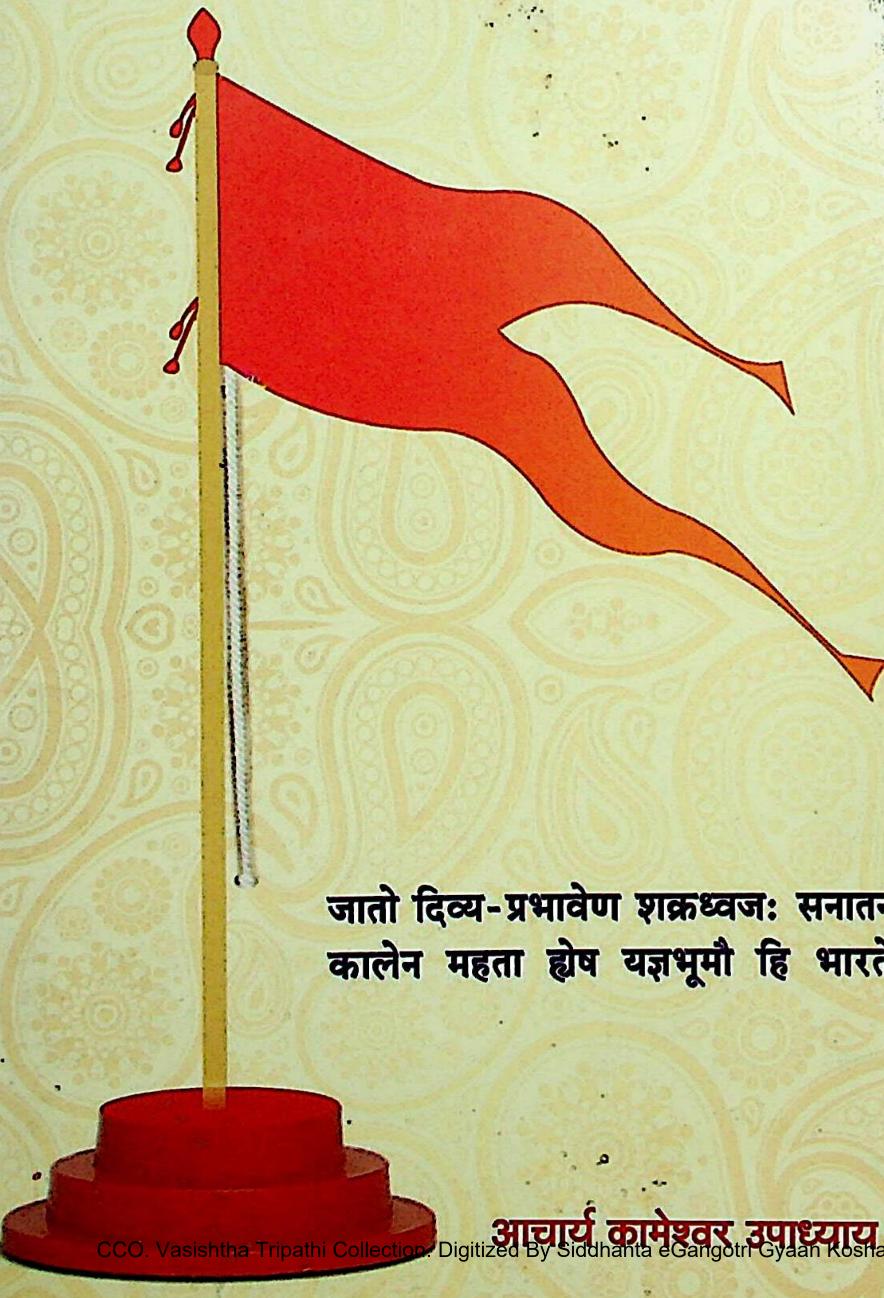
ध्वज का इतिहास



जातो दिव्य-प्रभावेण शक्रध्वजः सनातनः।
कालेन महता ह्येष यज्ञभूमौ हि भारते।।

आचार्य कामेश्वर उपाध्याय

नमो नमस्ते 'भगवा' ध्वजाय

विश्वध्वज है शक्रध्वज। इसे भगवा ध्वज भी कहते हैं। यह देवासुर संग्राम काल में सृष्टि के चतुर्थ महायुग में देवकार्य हेतु अग्निदेव के आह्वान पर यज्ञकुण्ड से समुद्भूत हुआ था।

इसमें अग्निदेव की सात शक्तियाँ (काली, कराली, मनोजवा, सुलोहिता, सुधूम्रा, विस्फुलिङ्गिनी, विश्वरुचि) समाहित थीं। इसका रंग स्वर्ण-रक्त-कषाय वर्ण का था। द्विशीर्ष अग्निदेव की तरह यह ध्वज द्विजिह्व था। अग्नि लपटों की तरह इसकी एक शिखा बड़ी और दूसरी छोटी थी। यह रेशमी ध्वजांशुक था।

इस शक्रध्वज (भगवा ध्वज) का दिव्यदण्ड हरि-चन्दन वृक्ष का था। इस दण्ड की लम्बाई देवराज इन्द्र के बत्तीस हाथ (प्रायशः २५० फीट) की थी। इस दण्ड में माणिक्य-मुक्ता-प्रवाल-पाचि(पन्ना)-पुष्पराग-वज्र(हीरा)-नीलमणि-गोमेदक-वैदूर्य जटित था। इन रत्नों से निकलने वाली रश्मियाँ सभी दिशाओं को अतिक्रान्त कर रही थीं। इस ध्वज में दण्डतुल्य द्विआवृत्ति रज्जु मालिका थी। इन्हें खींचने पर ध्वजोत्तोलन होता था। कालान्तर में ध्वजदण्ड शीर्ष के चक्र से आठ रस्सियाँ गुम्फित कर अष्ट (पूर्व-अग्नि-दक्षिण-नैर्ऋत्य-पश्चिम-वायव्य-उत्तर-ईशान) दिशाओं में बाँधी जाती थीं। इस ध्वज के उत्पन्न होते ही महर्षियों ने पुष्कल मंत्र स्तुति से इसे पूजित किया।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतवर्ष का वर्तमान तिरंगा ध्वज राष्ट्र ध्वज के रूप में समादृत है। आज इस ध्वज में भारतवर्ष राष्ट्र की समस्त शक्ति अन्तर्निहित है। यह मानव कल्पना प्रसूत ध्वज है। इसका अपना अद्यतन इतिहास है। इस ध्वज में तीन वर्ण (केसरिया-सफेद-हरा) हैं तथा मध्यभाग में अशोकचक्र सुशोभित है। यह ध्वज भारतवर्ष राष्ट्रलक्ष्मी का प्रतीक है।

2-5

ध्वज का इतिहास

लेखक

आचार्य कामेश्वर उपाध्याय

महासचिव

अखिल भारतीय विद्वत् परिषद्

प्रकाशक

अखिल भारतीय विद्वत् परिषद्

सम्पर्कसूत्र-
'देवतायन'
९६, जानकीनगर,
पो.ऑ. बजरडीहा,
वाराणसी - २२१ ००६ (उ.प्र.)
फोन. ०५४२-२३१९५२१, २३००४७३

प्रकाशन वर्ष : २०१६

मूल्य : २५/-

प्रतियाँ : ५ हजार

ध्वजवृत्त

देवसेना की विजय के लिए, देवभूमि की रक्षा के लिए, देव संस्कृति के प्रतीक मानदण्ड के दिग्दर्शन के लिए, राष्ट्र लक्ष्मी को शिखरारूढ़ करने के लिए दो सिर वाले अग्निदेव ने यज्ञकुण्ड ज्वाला से केतु (ध्वज, पताका) को उत्पन्न किया। इसे सुसज्जित कर भगवान् ब्रह्मा प्रोक्त विधि से पूजित कर देवराज इन्द्र को समर्पित किया। इस ध्वज के प्रताप से महासंग्राम में देवों की विजय हुई और असुरों की पराजय। इस ध्वज से प्रभावित होकर देवराज इन्द्र ने प्रतिवर्ष इसका पूजन करना शुरू किया। ध्वज का नाम शक्रध्वज पड़ा और देवसेना का नाम ध्वजिनी हुआ। पराजित असुरों ने पराजय की समीक्षा असुरगुरू शुक्राचार्य (भार्गव) के सान्निध्य में की। तब पता चला कि देवों की विजय का कारण अग्निगर्भ सम्भूत भगवा ध्वज है। असुराचार्य भार्गव के समझाने पर असुरों ने भी इस ध्वज को विधिविधानपूर्वक अपनाया और देवों से समझौता कर लिया। तभी से यह कहावत प्रसिद्ध हुई- झण्डा के नीचे आना। देवताओं के ध्वज को असुरों ने भी अपना लिया और द्वन्द्व समाप्त हो गया। इन्द्र के अनेक राजर्षि मनुष्य मित्रों ने भी उनसे शक्रध्वज को पूजा विधान के साथ प्राप्त किया। इनमें मान्धाता, उपरिचरवसु आदि प्रसिद्ध रहे हैं। श्रीराम और लङ्केश रावण के द्वन्द्व युद्ध में देवराज इन्द्र ने वज्रध्वज युक्त अपने दिव्य स्यन्दन (रथ) को मातली सारथी के साथ भगवान् श्रीराम की सहायता के लिए भेजा। शक्रध्वज इन्द्ररथ और इन्द्रसारथी मातली के शुभ लक्षणों का प्रभाव युद्ध में श्रीराम के लिए अत्यन्त अनुकूल रहा।

पृथ्वी पर मनुष्यों ने ध्वज को अनेक कार्यों में प्रयुक्त किया। ध्वज ने ईशान कोण में भवन, मन्दिर, दुर्ग एवं मठों पर स्थान प्राप्त किया। रथ पर ध्वज लगाने से रथी की ख्याति ध्वज के कारण बढ़ने

लगी। लोग दूर से ही ध्वज देखकर रथी को पहचान लेते थे। ध्वज को देखकर व्यक्तिं एवं राष्ट्र के जयकारे लगने लगते थे। विष्णु गरुणध्वज हो गये। शिव वृषध्वज हुए और इन्द्र वज्रध्वज नाम से प्रख्यात हुए। पार्थ के रथ पर दूर से लहराता कपिध्वज दिव्य ध्वज था जो कभी न फटता था, न मैला होता था। ध्वजपट सदा नवीन और प्रकाशमय था। किसी अवरोध से यह ध्वज न रुकता था, न टूटता था। ध्वजदण्ड पारदर्शी एवं ज्योतिर्मय था। ध्वज की रस्सी भी दिव्य प्रभाव से युक्त थी। पार्थ का ध्वज **अभङ्गध्वज** था। इस ध्वज पर रूद्रावतार महामाहेश्वर श्री हनुमान् जी अपनी सम्पूर्ण शक्ति के साथ विद्यमान् रहते थे।

यज्ञ का ध्वज भगवा बना। भगवती दुर्गा का भी ध्वज भगवा ही रहा। यमराज के पूजकों ने काले रंग के ध्वज पर मनुष्य की खोपड़ी का चित्र बनाकर उनकी पूजा की। उनका मानना था यमराज की पूजा करने के बाद अन्य देवों की उपासना का अर्थ नहीं रहता। ये दूसरे देवों के पूजकों का प्राण हर लेते हैं। प्राचीन काल के सहस्राधिक ध्वज चिह्न लुप्त हो चुके हैं। महाभारत युद्ध में ही अनेक प्रकार के ध्वजों का प्रयोग हुआ था। भारतवर्ष ने स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद अपना ध्वज तीन रङ्ग से युक्त, मध्य भाग में अशोक चक्र अंकित एक शीर्ष ध्वज चुना। ध्वज की व्याख्या हमेशा होती रही है और आगे भी होती रहेगी। ध्वज केवल प्रतीक मात्र नहीं है यह विजय दिलाने वाल दिव्य प्रभाव युक्त आयुध है। यह राष्ट्र लक्ष्मी है।

ध्वज वैदिक संस्कृति के गर्भ 'यज्ञ कुण्ड' से उत्पन्न दैवी आयुध है। कोई भी आयुध शत्रु पर विजय दिलाने हेतु होता है। ध्वज भी विजय प्रदान करता है। इस पृथ्वी पर भारतवर्ष में ध्वज प्रथमतया उत्पन्न हुआ और विश्व सभ्यता एवं संस्कृति में सर्वत्र समादृत हुआ। आज सभी के अपने ध्वज हैं। भारतवर्ष का ध्वज भगवा था। आज तिरंगा है। आइये इसकी समाराधना करें। ध्वज संस्कृति की वन्दना करें।

विजयादशमी
११.१०.२०१६

कमलेश्वर उपाध्याय

विषय-सूची

❖❖❖

ध्वज का इतिहास

ध्वजावतारः

अनेकरत्नार्चितपादुकायै
नमो नमस्ते ध्वजदेवतायै।
जयप्रदायै गगनस्थितायै
नमोऽग्निजायै 'भगवा'शिखायै।।१।।

अनेक प्रकार के रत्नों से जिसकी पादुका (ध्वजपीठ) सुशोभित है, जो गगन में स्थित होकर विजय प्रदान करने वाली है, जो अग्नि की पुत्री है, जिसकी लपटें भगवा रङ्ग की हैं ऐसी ध्वजदेवी को बार-बार प्रणाम है।

पितामहेनापि च संशिताय
राजर्षिमुख्यैरपि वंदिताय।
तमोऽघनाशाय यशःप्रदाय
नमो नमस्ते 'भगवा'ध्वजाय।।२।।

पितामह ब्रह्मा ने जिस ध्वंज को देवों की विजय हेतु संस्तुत किया था, जो प्राचीन राजर्षियों के द्वारा वंदित रहा है, जो अन्धकार और अघ का नाशक तथा यश का प्रदायक है ऐसे भगवा ध्वज को बार-बार प्रणाम है।

महेन्द्रयज्ञाद् तपसा प्रदीप्तः
सदण्डरज्ज्वा सहसा प्रजातः।
अयं ध्वजो भारतभूमिभागे
सुखं जनानां कुरुते प्रवृद्धम्।।३।।

यह भगवा ध्वज पवित्र भारत भूमि में देवराज इन्द्र के यज्ञकुण्ड से तप के प्रतिफल के रूप में प्रदीप्त होकर दिव्यदण्ड और रस्सी के साथ अकस्मात् उत्पन्न हुआ। यह प्रजाजन के सुख को बढ़ाने वाला है।

जातो दिव्य-प्रभावेण शक्रध्वजः सनातनः।
कालेन महता ह्येष यज्ञभूमौ हि भारते।।४।।

देवताओं के तप से दिव्य प्रभाव युक्त यह सनातन इन्द्रध्वज महान् काल व्यतीत होने के पश्चात् यज्ञ भूमि भारतवर्ष में उत्पन्न हुआ।

इयं पताका शुभराष्ट्रलक्ष्मीः सुरासुरैः सर्वजनैर्नुताऽस्ति।
महेन्द्रकार्याय समागताऽत्र सपर्यया सा प्रकटीबभूव।।५।।
धराप्रसन्ना गगनं सुशान्तं प्रमोदयुक्ता शुभदेवसेना।
ध्वजावतारो विजयाय जातो जनस्य राज्ञश्च विकासहेतोः।।६।।

यह पताका (ध्वज) शुभ राष्ट्र लक्ष्मी है। यह सुर, असुर एवं सभी जनों से वन्दिता है। देवराज इन्द्र के कार्य हेतु यह पृथ्वी पर उत्पन्न हुई। यह तप के प्रभाव से प्रकट हुई है। पृथ्वी प्रसन्न हो गई, गगन सुशांत हो गया, शुभदेवसेना प्रमोद से भर गयी। ध्वज का अवतरण देवों की विजय के लिए साथ ही राजा और प्रजा के विकास के लिए हुआ। (ये छः श्लोक सद्यः समुत्पन्न हैं। **ममैव**)।

ध्वज का अर्थ-

१. ध्वज का सहज और समान्य अर्थ होता है- सर्वोच्च। जो जिस क्षेत्र में उच्चता का प्रतीक हो उसे ध्वज कहते हैं। राष्ट्र का सर्वश्रेष्ठ प्रतीक ध्वज होता है। अतः उसे राष्ट्रध्वज कहते हैं। अपने कुल का सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति कुलध्वज कहलाता है। रथ के शिखर पर फहरने वाला विशेष चिह्न से सुशोभित ध्वज व्यक्ति विशेष की पहचान होता है। भगवान् विष्णु के रथ पर गरुण चिह्न से युक्त ध्वज गरुणध्वज कहलाता है।

२. ध्वज का अर्थ ऊँचा या उच्च होता है। जो दूर से हिलता, लहराता दिखलाई दे उसे ध्वज कहते हैं। ध्वज गतौ धातु से अर्थ होगा- जो गमनशील हो, हिलता-डुंलता हो उसे ध्वज कहते हैं।

३. ध्वज का एक नाम पताका है। जो दूर से ही पहचान बता दे, दूसरे से अलग (भेद) कर दे उसे पताका कहते हैं- **पत्यते ज्ञायते कस्यचिद् भेदोऽनया पताका।** दो समूहों का अथवा दो सेनाओं का भेद-ज्ञान ध्वज या पताका से ही संभव हो पाता है। यह दूर से ही दिखलाई देने के कारण ध्वज कहलाता है।

४. ध्वज का एक नाम वैजयन्ती है। जो विशेष विजय दिलाने वाली हो वह वैजयन्ती (ध्वज) कहलाती है। गंगा नदी को स्वर्ग आरोहण

कराने वाली वैजयन्ती (ध्वज) कहा गया है- **स्वर्गारोहणवैजयन्ती भवतीं भागीरथीं प्रार्थये।**

५. ध्वज का वैदिक नाम केतु है। केतु का अर्थ होता है परिज्ञान कराने वाला- **केत्यते ज्ञायते इति केतुः**। जिसे दूर से ही देखकर ज्ञात हो जाये कि यह सेना अमुक देश या राजा की है उसे केतु कहते हैं।

ध्वज के नाम-

सनातन भारतभूमि पर देवों के द्वारा ध्वज की उत्पत्ति होने के कारण संस्कृत वाङ्मय में इसके अनेक नाम प्रख्यात हैं। संस्कृत वाङ्मय में ध्वज के जितने नाम उपलब्ध हैं उतने नाम किसी भी सभ्यता या संस्कृति के अन्तर्गत नहीं प्राप्त होते हैं। ये नाम निम्नलिखित हैं- १. ध्वजः २. पताका ३. वैजयन्ती ४. केतुः ५. केतनम् ६. केतुमत् ७. शिखा ८. इन्द्रध्वजः ९. शक्रध्वजः १०. शक्रचिह्नम् ११. इन्द्रकेतुः।

अमरकोष में ध्वज़ के पर्याय शब्दों का उल्लेख करते हुए लिखा है- **पताका वैजयन्ती स्यात् केतनं ध्वजमस्त्रियाम्** (८/९९)। पताका, वैजयन्ती और शिखा ध्वज के स्त्रीलिंग वाचक शब्द हैं।

हिन्दी में ध्वज को झण्डा कहा जाता है। ध्वजपट और दण्ड का अभेद सम्बन्ध होता है। दण्ड में ही ध्वजपट को लगाकर रस्सी के द्वारा फहराया जाता है। धीरे-धीरे ध्वजदण्ड शब्द से ध्वज अलग हो गया और व्यवहार में दण्ड या दण्डा रहा। यही कालान्तर में झण्डा हुआ।

अंग्रेजी में ध्वज को फ्लैग (Flag) कहते हैं। यह अंग्रेजी भाषा में एकमात्र ध्वज वाचक शब्द है।

ध्वज के अङ्ग-

ध्वज के तीन मुख्य अङ्ग होते हैं- (१) ध्वजांशुक, ध्वजपट या ध्वजवस्त्र, (२) ध्वजदण्ड, ध्वजयष्टिः या ध्वजवंश, (३) ध्वजरज्जु, ध्वजसूत्र या रज्जुमल्लिका। प्राचीनतम काल में ध्वज के ये ही तीन प्रमुख अङ्ग वर्णित थे। ग्यारहवीं शताब्दी में महाराज भोजदेव विरचित समराङ्गण-

सूत्रधार ग्रन्थ के इन्द्रध्वज अध्याय में ध्वज से सम्बन्धित अनेक अङ्गों को बढ़ा दिया गया है जैसे- ध्वजगृह, ध्वजपीठ, ध्वजभ्रामणयन्त्र, मल्ल, लकटं, सूची, अष्टरज्जु एवं मृगालियाँ प्रभृति। ध्वजयन्त्र में शतपक्षी (सौ डैनों वाला यन्त्र) की परिकल्पना अत्यन्त जटिल एवं अव्यवहारिक थी। इससे ध्वज से सम्बन्धित उत्तोलन कर्म का अतिविस्तार हो गया। यह सुनिश्चित था कि यह अतिविस्तार उपेक्षित हो जाये और यह हुआ भी।

ध्वज के प्रकार-

सृष्टि के आरम्भ में देवताओं के द्वारा उत्पादित होने के कारण ध्वज को देवध्वज कहते थे। देवों के राजा इन्द्र हेतु युद्ध में परिज्ञान प्रतीक होने के कारण इसे शक्रध्वज कहा जाने लगा। मुख्यरूप से देवध्वज ही इस पृथ्वी पर आरम्भ काल का ध्वज है।

देवराज इन्द्र के अतिरिक्त मनुष्यों ने अपने राजा या राष्ट्र के लिए विविध प्रकार के ध्वजों का प्रयोग आरम्भ किया। ये सभी ध्वज मनुष्य ध्वज या राष्ट्रध्वज के रूप में चिह्नित किये गये। फलतः सृष्टि में दो प्रकार के ध्वज आज भी प्रचलित हैं- देवध्वज एवं राष्ट्रध्वज। देवध्वज ही आज धर्मध्वज बन गया है। सम्प्रदायों के भी अपने-अपने ध्वज होते हैं। ये देवध्वज के ही भाग होते हैं।

ध्वज का समादर-

किसी भी देव, राष्ट्र या कुल का ध्वज सर्वोच्च समादरणीय होता है। ध्वज को प्राचीन ग्रन्थों में राष्ट्रलक्ष्मी या राज्यलक्ष्मी कहा गया है। जिस तरह से किसी सौभाग्यवती सुन्दरी महिला की केशराशि काट देने से वह निःश्री हो जाती है उसी तरह किसी राष्ट्र का ध्वज अन्य राष्ट्र द्वारा विनष्ट कर देने पर वह राष्ट्र निस्तेज, श्रीहीन और अस्तित्वविहीन हो जाता है। अतः ध्वज ही राज्यलक्ष्मी होता है। महाकवि कालिदास ने अपने रघुवंश महाकाव्य में वर्णन करते हुए लिखा- महाराज रघु ने एक मयूर पत्रक बाण से देवराज इन्द्र के महाशनि (वज्र) ध्वज को काट कर देवताओं को श्रीहीन कर दिया जैसे किसी सौभाग्यवती स्त्री के केश को बलपूर्वक काटकर उसे श्रीहीन कर दिया जाता है-

जहार चान्येन मयूरपत्रिणा शरेण शक्रस्य महाशनिध्वजम्।
चुकोप तस्मै स भृशं सुरश्रियः प्रसह्य केशव्यपरोपणादिव।।

रघुवंशमहाकाव्यम्, ३/५६

शकुनशास्त्र के ग्रन्थों में ध्वजभंग को राष्ट्रभंग के अपशकुन के रूप में वर्णित किया गया है। ध्वज के नष्ट होते ही राष्ट्र नष्ट हो जाता है अथवा जिस राष्ट्र का अपना स्वतन्त्र ध्वज नहीं होता वह परतन्त्र और पराजित होता है।

वेदों में ध्वज-

ऋग्वेद (१/६/३) एवं शुक्लयजुर्वेद (२९/३७) में ध्वज से सम्बन्धित जो मंत्र उपलब्ध है वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है-

केतुं कृण्वन्न केतवे पेशो मर्या अपेशसे। समुषद्भिरजायथाः।।

इस मंत्र का यदि शब्दार्थ किया जाये तो अर्थ निष्पत्ति इस प्रकार होगी- प्रज्ञान प्राप्ति की क्षमता से रहित मनुष्यों को प्रज्ञान कराने वाला उदित होता हुआ केतु (ध्वज) स्वर्ण प्रदान करे।

वेदों में सूर्य और अग्नि को दिव्य केतु के रूप में स्वीकार किया गया है। अनन्त आकाश में सूर्य देवध्वज (केतु) की तरह सर्वोच्च दिखाई देता है। यह सूर्य उषा के साथ उदित होता है। यह मर्या (मनुष्यों) को स्वर्ण या रजत प्रदान करता है।

अग्निहोत्र के कुण्ड से समुत्थित अग्निशिखा (ज्वाला) विशिष्ट पहचान कराती हुई, अज्ञान को मिटाती हुई तथा प्रज्ञान देती हुई मनुष्य प्रजाति को स्वर्ण प्रदान करती है।

उक्त मंत्र के देवपरक दो अर्थ हैं। कहीं सूर्य को देवध्वज के रूप में चिह्नित किया गया है तो कहीं अग्निदेव को देवध्वज माना गया है। योद्धाओं को केतु के बिना अपनी सेना का प्रज्ञान नहीं होता है। अपनी सेना का प्रज्ञान अपने केतु द्वारा ही हो पाता है। जिन मनुष्यों में सूक्ष्म विधि से अपने पक्ष का ज्ञान नहीं हो पाता उन्हें यह केतु (ध्वंज) ही प्रज्ञान प्रदान करता है। उब्बट ने अपने वेदभाष्य में पेशः का अर्थ स्वर्ण या रौप्य (चाँदी) किया है। हिन्दी भाषा में पेशः को ही पेस या पैसा कहा जाने लगा। चाँदी को रूप्य या रौप्य कहते हैं। आज भी भारतीय मुद्रा पर रूप्यकम् लिखा होता है। फलतः उब्बट ने **पेशः सुवर्णं रूप्यं वा**

कहा। लोक में जातवेदस शब्द अग्नि का पर्याय है। वेदों में कहीं कहीं सूर्य को भी जातवेदस कहा गया है। अग्नि को विश्व नर का नेतृत्व करने वाला वैश्वानर कहा जाता है। अग्नि ही देवों के पुरोहित हैं। आप यज्ञ के प्रथम ऋत्विज हैं। आप समस्त रत्नों के तेज से समन्वित अत्यन्त तेजस्वी होने के कारण प्रथम स्तूयमान् हैं-

अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्।।

ऋग्वेद, १/१/१

अग्निपुराण में ध्वज-

अग्निपुराण के १०२ अध्याय में मन्दिर एवं देवता से सम्बन्धित ध्वज का वर्णन प्राप्त होता है। ध्वजदण्ड वंशवृक्ष (बाँस) या सालवृक्ष का होना चाहिए। वंश या साल के ध्वजदण्ड सर्वकामप्रद होते हैं। अग्निपुराण में ध्वजस्थापना हेतु पीठ या कुण्ड निर्माण की अनिवार्यता नहीं कही गयी है- **न च कुण्डस्य कल्पना।** चूलक निर्माण कर उसी में ध्वजदण्ड को स्थापित करने हेतु कहा गया है। यह चूलक काष्ठ या पत्थर का होता है। चूलक के मध्य में ध्वजमूल की परिधि के तुल्य छिद्र होता है जिसमें ध्वजदण्ड को गाड़ा जाता है। यह प्रक्रिया अत्यन्त सरल और सर्वजन द्वारा करणीय है। अग्निपुराण के अनुसार ध्वज फहराने के पश्चात् यदि वह तत्काल टूट जाता है तो राजा या यजमान का अवश्यंभावी अनिष्ट होता है-

राज्ञोऽनिष्टं विजानीयाद् यजमानस्य वा तथा।। १०२/८

ध्वज की उत्पत्ति-

ध्वज की उत्पत्ति के संदर्भ में दो कथायें प्राप्त होती हैं। अग्निदेव द्वारा ध्वजोत्पत्ति तथा भगवान् विष्णु द्वारा ध्वजोत्पत्ति। दोनों उत्पत्तियों में अग्निदेव से ध्वजोत्पत्ति की कथा अनेकविध समुचित प्रतीत होती है। देवों और असुरों के महासंग्राम में देवसेना प्रायशः आपस में ही एक दूसरे का हनन करने लगती थी। इस समस्या से त्रस्त होकर देवराज इन्द्र ने देवगुरु बृहस्पति से इस समस्या का निवारण पूछा। देवगुरु बृहस्पति

ने कहा- भगवान् ब्रह्मा ने मुझे ध्वज उत्थापन की विधि को एकान्त में बतलाया है। इस विधि के द्वारा ध्वज की स्थापना करने से विजयश्री: की प्राप्ति होती है। देवराज इन्द्र ने देवगुरु बृहस्पति से पूछा- हे इज्य! (यजन करने वाले) यह ध्वज कहाँ से प्राप्त होगा? इसका स्वरूप कैसा होगा? देवगुरु बृहस्पति ने कहा- हे इन्द्र! देवों के सर्वप्रिय हितकारी एवं आहुति पहुँचा कर पोषण करने वाले अग्निदेव हैं। अत: उन्हीं से प्रार्थनापूर्वक देवहित साधना के लिए दिव्य केतु (देवध्वज) उत्पन्न करने हेतु निवेदन किया जाय। देवराज इन्द्र ने अपने परम मित्र अग्निदेव का स्मरण किया। उनके स्मरण करते ही अग्निदेव प्रकट हुए। देवों की विजय के लिए उन्होंने अपने शरीर से दिव्य ध्वज को उत्पन्न किया। जिस तरह से अग्नि देवता द्विशीर्ष (दो सिरों वाले) हैं उसी तरह द्विशीर्ष ध्वज को उन्होंने उत्पन्न किया। अग्नि का वर्ण ही उस ध्वज का वर्ण था। अग्नि लपटों की तरह वह फहरता हुआ ध्वज परम तेजस्वी, भ्राजमान् दिखलाई दे रहा था।

भगवा ध्वज-

भगवान् अग्नि के सदृश उस दिव्य ध्वज को लोक में भगवा ध्वज कहा गया। भग शब्द से भगवा बना है। भग का अर्थ होता है ऐश्वर्य। इस ध्वज के माध्यम से देवों को राज्यलक्ष्मी एवं ऐश्वर्य की प्राप्ति हुई थी। अत: उन्होंने इस दिव्यध्वज को **षडैश्वर्यध्वज** कहा। षड् ऐश्वर्य जिसमें विद्यमान् होता है उसे भगवान् कहते हैं। श्री:, काम, माहात्म्य, वीर्य, तेज एवं कीर्ति की अभिव्यक्ति जहाँ एक साथ हो उसे भग कहते हैं-

भगं श्रीकाममाहात्म्यवीर्ययत्नार्ककीर्तिषु।। अमरकोष: ३/३/२६

भगवा ध्वज के पूजन से देवराज इन्द्र को निष्कंटक राज्य की प्राप्ति हुई थी। अत: इन्द्र ने इस ध्वज को प्रणामपूर्वक फहराकर इसकी प्रदक्षिणा की थी। देवों के राजा इन्द्र से पूजित होने के कारण इस ध्वज को भगवत्ता प्राप्त हुई। भगवाध्वज में छ: ऐश्वर्य विद्यमान् हैं। ये हैं- ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री:, ज्ञान और वैराग्य। इन्हें देने वाला यह दिव्य देवध्वज भगवाध्वज है-

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना।। विष्णुपुराण

इसका रंग कषाय वर्ण का है। फलतः यह वैराग्य और ज्ञान का प्रदाता है। यह द्विजिह्व होने के कारण देवलोक से सम्बन्धित है क्योंकि द्विजिह्व अग्नि देवों तक मनुष्य प्रदत्त हविष्य को पहुँचाते हैं।

अग्निदेव द्वारा उत्पादित ध्वज दिव्यदण्ड, दिव्य अंशुक (पट) तथा दिव्य रज्जु से युक्त था। उस समस्त ध्वजदण्ड में विविध प्रकार के दिव्य रत्न जटित थे। उन रत्नों के दिव्य प्रकाश के कारण उस ध्वज को सामान्य नेत्र से देखने में कष्ट होता था। उस ध्वज का तेज सूर्य सदृश था। उस ध्वज को देवराज इन्द्र ने प्रणामपूर्वक पूजित किया और उसे अपनी सेना को समर्पित किया। सेना की अग्रिम पंक्ति में ध्वज लेकर चलने वाले सैनिकों के कारण देवसेना का नाम **ध्वजिनी** पड़ा। इस दिव्य ध्वज का भगवान् ब्रह्मा प्रोक्त विधान के द्वारा देवगुरु बृहस्पति ने पूजन कराया। तत्पश्चात् तीन दिन के भीतर देवों ने असुरों पर विजय प्राप्त की। **ध्वज असुर पर सुर की विजय का प्रतीक है। ध्वज राष्ट्र की स्वतन्त्रता का प्रतीक है। ध्वज राजलक्ष्मी का प्रतीक है। आज भी पूरे विश्व में राष्ट्र की स्वतन्त्रता का प्रतीक ध्वज ही है। ध्वज ऊँचा रखने के लिए विश्व में अनेक युद्ध हुए हैं। ध्वज देवसंस्कृति का मानदण्ड है।** इस ध्वज को दैत्यगुरु शुक्राचार्य के आदेश पर असुरों ने भी पूजित कर अपनाया। आज विश्व की समस्त संस्कृतियों एवं सभ्यताओं में यह ध्वज किसी न किसी रूप में पूजित है।

ध्वज का स्वरूप-

समराङ्गणसूत्रधार ग्रन्थ के अनुसार ध्वज को ध्वजपीठ के ऊपर स्थापित किया जाता था। यह ध्वजपीठ चक्राकार घूमता था। इसकी ऊँचाई ध्वज के चतुर्थांश तुल्य होती थी। ध्वजपीठ में सौ पंक्षियों के पंखों के सदृश घूर्णनशील पंखयन्त्र लगाये जाते थे। इस पीठ में मणि-माणिक्य युक्त विशाल ध्वजदण्ड को स्थापित किया जाता था। इस ध्वज को स्थापित करने से पूर्व आभिचारिक मंत्रों से संसिद्ध किया जाता था। इसे युद्धक्षेत्र में सबसे आगे स्थापित किया जाता था। शांति के दिनों में यह ध्वज दुर्ग या राजभवन के शिखर पर लहरता था।

ध्वजदण्ड का प्रमाण-

(i) अग्निपुराण के अनुसार- ध्वजदण्ड की श्रेष्ठ ऊँचाई (लम्बाई) १४ हाथ, मध्यम ऊँचाई ९ हाथ और अवर (सामान्य) ऊँचाई ६ हाथ कही गयी है- **शक्रैर्ग्रहैरसैर्वापि हस्तैर्दण्डस्तु सम्मितः** (१०२/६)।

(ii) देवीपुराण के अनुसार- ध्वजदण्ड की लम्बाई क्रमशः ११ हाथ, ९ हाथ या ५ हाथ का होना शुभकारी होता है। क्रमशः ये ध्वजदण्ड श्रेष्ठ, मध्यम एवं अवर होते हैं- **एकादशकरा वत्स नव पञ्चकराऽपरा।**

(iii) गर्ग संहिता के अनुसार- गर्ग मुनि के अनुसार ध्वज की लम्बाई क्रमशः २८ हाथ, २० हाथ और १२ हाथ लेनी चाहिए। २८ हाथ लम्बा ध्वजदण्ड श्रेष्ठ, २० हाथ लम्बा ध्वजदण्ड मध्यम एवं १२ हाथ की ऊँचाई वाला ध्वजदण्ड सामान्य होता है। ध्वजमूल १२ अङ्गुल परिधि वाला होना चाहिए-

अष्टाविंशत्करा यष्टिरष्टहस्ता ततोऽपरा।
विष्कम्भश्चाङ्गुलैस्तस्याः षड्भिर्द्विगुणितैः स्मृतः।।

बृहत्संहिता, अध्याय ४२, श्लोक ४० (भट्टोत्पल)

ध्वजदण्ड के अग्रभाग को शिखा (विशिष्ट आकृति) से युक्त करना चाहिए। ध्वजदण्ड सार (साल) वृक्ष का शुभकारी होता है-

समग्रमनुलोमं वा तक्षं प्राक् शिखयान्वितम्।
कुर्यादिन्द्रध्वजं शुभ्रं सारदारुमयं शुभम्।।

बृहत्संहिता, अध्याय ४२, श्लोक ४० (भट्टोत्पल)

(iv) समराङ्गणसूत्रधार के अनुसार- ग्यारहवीं शताब्दी के समराङ्गणसूत्रधार ग्रन्थ के अनुसार ३२ हाथ का दण्ड वाला ध्वज सर्वश्रेष्ठ ध्वज होता है। २८ हाथ का ध्वज मध्यम होता है तथा २४ हाथ का ध्वज अधम (सामान्य) होता है-

श्रेष्ठं द्वात्रिंशता हस्तैर्विंशत्या युतयाष्टभिः।
मानं स्यान्मध्यमं तस्य चतुरन्वितयाधमम्।।

समराङ्गणसूत्रधार, १७/२३

समराङ्गणसूत्रधार ग्रन्थ के अनुसार ध्वज दण्ड का चयन करते समय यह ध्यान दिया जाता था कि दण्ड प्रत्येक एक हाथ (डेढ़ फीट) की ऊँचाई पर अर्द्धांगुल (आधा इंच) पतला हो। इस ग्रन्थ में ध्वज के अग्र भाग को कुष्य कहा गया है। जिस प्रकार से कुश जड़ से अग्रभाग तक संतुलित पतला होता है उसी तरह ध्वज को संतुलित आयतन वाला होना चाहिए। ध्वजमूल और ध्वजकुष्य के विस्तार में अष्टमांश का अन्तर होता था। ऐसा ध्वजदण्ड अत्यन्त प्रबल और विजयप्रद होता था।

ध्वजदण्ड के परिमापक-

ध्वजदण्ड की ऊँचाई किसके हाथ से सुनिश्चित की जाये? क्या शिल्पी मनमाने ढ़ंग से ध्वजदण्ड की लम्बाई स्वयं तय करेगा? क्या अनेक वर्ष पुराना ध्वजदण्ड का उपयोग राष्ट्रहित में होगा? ध्वजोत्तोलन का अधिकारी कौन है? इन सभी प्रश्नों का उत्तर शास्त्रों में इंगित है। किसी भी राष्ट्र का सर्वोच्च अधिपति राष्ट्र के ध्वजोत्तोलन का अधिकारी होता है। ध्वजोत्तोलन कर्म राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, महा अमात्य, मुख्य न्यायाधीश, राज्यपाल, मुख्यमंत्री या राष्ट्र के प्रमुख व्यक्ति के द्वारा सम्पन्न होना चाहिए। ध्वजदण्ड का निर्माण इन्हीं प्रमुख व्यक्तियों के हाथ के परिमापन से होना चाहिए। वस्तुतः ध्वजोत्तोलन तभी अपना प्रतिफल दे सकेगा जब विधि-विधानपूर्वक उसका उत्तोलन किया जाये। प्रत्येक व्यक्ति द्वारा ध्वज फहराना स्वतन्त्रता और प्रसन्नता का परिचायक हो सकता है पर अपूर्व फल का उत्पादक नहीं। राष्ट्र विजय के लिए अपूर्व फल की प्राप्ति महत्त्वपूर्ण होती है। अतः राष्ट्राध्यक्ष द्वारा विधि-विधानपूर्वक ध्वजोत्थान करना चाहिए। साथ ही ध्वजदण्ड का निर्माण राष्ट्राध्यक्ष के हाथ परिमाण के तुल्य ग्रहण करना चाहिए- **करमानेन कल्पयेत्।** प्राचीन भारतवर्ष में राष्ट्र ध्वज का निर्माण राजा के हाथ परिमाण के तुल्य होता था- **स्वामि हस्तप्रमाणेन कर्त्तव्यं परिमापनम्।**

रत्नजटित ध्वजदण्ड-

प्राचीन काल में इन्द्रध्वज या देवध्वज में विविध प्रकार के रत्न एवं मणियाँ जटित होती थीं। रत्न और मणियों का प्रभाव विजयप्रद

होता है ऐसा सभी ग्रन्थों में लिखा हुआ है- **अचिन्त्यस्तु प्रभावो भवति मणिमन्त्रौषधीनाम्।** अतः ध्वज को सुसज्जित करने हेतु ध्वज दण्ड में माणिक्य, मुक्ता, प्रवाल, गारुत्मक (पन्ना), पुष्पराग (पुखराज), वज्र (हीरा), नीलमणि (नीलम), गोमेदक (गोमेद) और वैदूर्यमणि (लहसुनिया) जड़ा जाता था। स्थपति (निर्माता, शिल्पी) इस ध्वज दण्ड को गोघृत एवं औषधियों से स्नान करा कर चिकना बनाता था- **चूर्णैः सर्वौषधीभिश्च स्थपतिः स्नापयेत् स्वयम्।**

ध्वजदण्ड वृक्ष-

अग्निपुराण में ध्वजदण्ड हेतु वंशवृक्ष (बाँस) या सालवृक्ष को श्रेष्ठ कहा गया है। देवीपुराण में ध्वजदण्ड हेतु पाँच प्रकार के वृक्षों को शुभ माना गया है। ये हैं- (१) प्रियङ्गु (प्रियक) (२) धव (३) अर्जुन (४) उदुम्बर (५) गजकर्ण-

गत्वाऽन्विष्य शुभं वृक्षं प्रियङ्गुं धवमर्जुनम्।
उदुम्बरगजकर्णं च पञ्चैतान् शोभनान् हरेत्।।

ध्वजदण्ड हेतु चन्दन का वृक्ष श्रेष्ठतम माना गया है। चन्दन के न मिलने पर ही अन्य वृक्षों का दण्ड ग्राह्य होता है। आम, शाल एवं शाक का ध्वजदण्ड चन्दन के अभाव में शुभावह होता है-

अलाभे चन्दनं चाम्रशालशाकमयं तथा।
कर्त्तव्यं शक्रचिह्नार्थे न चान्यवृक्षजं क्वचित्।।

ध्वजदण्ड की पवित्रता की रक्षा अनिवार्य होती है। अतः शुभभूमि पर उत्पन्न वृक्ष के दण्ड ही ग्राह्य होते हैं। इन वृक्षों को पवित्र जल से सिञ्चित किया जाना अनिवार्य होता है-

शुभभूमिभवं ग्राह्यं शुभतोयं शुभावहम्।

प्राचीन काल में राज्य संरक्षित वाटिका में ध्वजदण्ड वाले वृक्षों को प्रयत्नपूर्वक लगाया जाता था- **ध्वजार्थे देवराजस्य रक्षितं त्वां नयाम्यहम्।**

ध्वजदण्ड हेतु उद्यान चयन-

ध्वजदण्ड का चयन देव (मंदिर) उद्यान के वृक्ष से नहीं करना चाहिए। सुन्दर-मध्यम ऊँचाई वाली यष्टि को कर (हाथ) मान से ग्रहण करना चाहिए-

ध्वजार्थे वर्जयेद् वत्स देवतोद्यानजान् द्रुमान्।
कन्यामध्योत्तमा यष्टिः करमानेन कल्पयेत्।।

देवीपुराण

उद्यान, मंदिर, श्मशान, बाँबी, मार्ग, यज्ञभूमि, टेढ़े वृक्ष (अस्पृष्ट), ठूँठ वृक्ष (कुब्ज), काँटे वाले वृक्ष, लता से युक्त वृक्ष, वन्दावृक्ष ध्वज दण्ड के लिए चयनित नहीं किये जाते हैं-

उद्यानदेवतालयपितृवनवल्मीकमार्गचितिजाताः।
कुब्जोर्ध्वशुष्ककण्टकिवल्ली वन्दाकयुक्ताश्च।।

बृहत्संहिता, इन्द्रध्वजसम्पद्, अध्याय ४२, श्लो. १७-१८

ध्वजदण्ड हेतु वृक्ष काटना-

ध्वजदण्ड हेतु वृक्ष को काटने के लिए निम्नलिखित मन्त्रप्रयुक्त होते हैं-

यानीह वृक्षे भूतानि तेभ्यः स्वस्ति नमोऽस्तु वः।
उपहारं गृहीत्वेमं क्रियतां वासपर्ययः।।
पार्थिवस्त्वां वरयते स्वस्ति तेऽस्तु नगोत्तम।
ध्वजार्थं देवराजस्य पूजेयं प्रतिगृह्यताम्।।

बृहत्संहिता, इन्द्रध्वजसम्पद्, अध्याय ४२, श्लो. १७-१८

वृक्ष की पूजा कर वृक्ष पर निवास करने वाले अदृश्य तत्त्वों को बलि दी जाती है। इन वृक्षों को ध्वजदण्ड हेतु उत्तर या पूर्वमुख होकर प्रातःकाल काटा जाता था- छिन्द्यात् प्रभातसमये वृक्षमुदक् प्राङ्मुखोऽपि वा भूत्वा।

धातुध्वजदण्ड का निषेध-

प्राचीन ग्रन्थों में ध्वजदण्ड हेतु केवल वृक्ष स्तम्भ ही चयनित किये जाते थे। वृक्षचयन, वृक्षनिमन्त्रण, ध्वजदण्डछेदन तथा ध्वजदण्ड का नगरप्रवेश एवं परिक्रमा अनिवार्य आवश्यक क्रिया होती थी। महाराज उपरिचरवसु की विधि से ध्वज के सभी संस्कार ईसा की पाँचवीं-छठवीं शताब्दी तक किये जाते थे। ग्यारहवीं शताब्दी से इन विधियों में व्यापक एवं अत्यधिक विस्तार देते हुए ध्वजसंस्कार सम्पन्न होता था। सोलहवीं शताब्दी तक वृक्ष के ध्वजदण्ड चयनित होते रहे हैं। देवताओं के लिए स्वर्ण, रजत (चाँदी), ताम्र, कांस्य या लौह दण्ड का चयन करना आसान

था। इस देश में चुम्बक की खोज महाभारत से बहुत पूर्व हो चुकी थी। इसका नाम अयस्कान्त था। फिर भी वृक्ष दण्ड के अतिरिक्त अन्य कोई दण्ड ध्वज के लिए शुभकारी नहीं माना गया। अत: देवों एवं चक्रवर्ती सम्राटों ने ध्वज हेतु वृक्ष दण्ड ही स्वीकार किया। इन सजीव वृक्षों में वनदेवी का निवास होता है। अत: वैदिकमंत्र द्वारा आमन्त्रण देकर ध्वजदण्ड काटने की प्रथा रही है। कटा हुआ ध्वजदण्ड जिस दिशा में, जिस स्थिति में गिरता था उसके अनुसार राज्य का वार्षिकफल निर्धारित होता था। लौह दण्ड के कारण यह प्रक्रिया समाप्त हो गयी। लोहे के ध्वजदण्ड राष्ट्रपति या प्रधानमंत्री के हाथ परिमाण के आधार पर नहीं बनाये जाते हैं। इन्हें बनाते समय शुभकाल का विचार नहीं किया जाता है। ये लौहदण्ड फुट परिमाप (पैर-मान) से मापे जाते हैं। ये अंग्रेजों की परम्परा है भारतवर्ष की नहीं। ध्वज फहराना एक राष्ट्रीय स्वतन्त्रता-स्मृतिदिवस मात्र बन कर रह गया। ध्वज द्वारा राष्ट्रविजय और भविष्यज्ञान की प्रक्रिया का समापन हो गया है।

ध्वजपट-

ध्वज का पट कितना बड़ा हो इस संदर्भ में विशेष निर्देश नहीं प्राप्त होता है। राजा, स्थपति, यजमान या ध्वज फहराने वाला प्रमुख व्यक्ति अपनी इच्छा से ध्वजपट को विस्तार देता है। ध्वज का अंशुक (वस्त्र) रेशमी वस्त्र या चिकने वस्त्र का होता है। वस्त्र का नवीन होना आवश्यक होता है। एक ही ध्वज को बार-बार नहीं फहराना चाहिए। एक ध्वजपट का प्रयोग एक बार ही करना शुभकारी होता है।

ध्वजपट का वर्ण-

ध्वजपट अग्नि वर्ण का होना चाहिए। इसे भगवा वर्ण भी कहते हैं। अग्निवर्ण का ध्वज देव स्वीकृत ध्वज है। यह देवसंस्कृति का प्रतिपादक है। ध्वज के अन्य वर्ण अन्य कार्य हेतु प्रयुक्त होते हैं। राष्ट्र रक्षा एवं देव संस्कृति समुन्नयन हेतु भगवा (अग्निवर्ण) ध्वज सर्वश्रेष्ठ होता है। कलियुग में अनेक सम्प्रदायों में अपनी इच्छा और फलप्राप्ति बुद्धि से अनेक वर्ण के ध्वजों का निर्माण शुरु हो गया। यम के पूजकों ने कृष्ण वर्ण के

ध्वज को फहराना शुरु किया। बृहत्संहिता में ध्वज के वर्णों के आधार पर ध्वज का फल कहा गया है जैसे- सफेद रंग का ध्वजपट विजयप्रद होता है। पीले रंग का ध्वज रोगप्रदायक होता है। चित्र-विचित्र रंग का ध्वज विजयप्रद होता है। लाल रंग का ध्वज शस्त्रभय उत्पन्न करता है-

तत्र पताकाः श्वेता भवन्ति विजयाय रोगदाःपीताः।
जयदाश्च चित्ररूपा रक्ताः शस्त्रप्रकोपाय।।

बृहत्संहिता, इन्द्रध्वजसम्पद्, अध्याय ४२, श्लो. २७

ध्वज रज्जु-

ध्वजदण्ड एवं ध्वजपट से युक्त रज्जु (रस्सी) एक, दो या आठ मालाओं (लडियों) की होती है। ध्वजदण्ड में लगी रस्सी अत्यन्त प्रबल एवं सुन्दर होनी चाहिए। आठ दिशाओं के आठ दिक्पाल होते हैं। अतः आठ दिशाओं में आठ लघु स्तम्भ (खुण्ट या खूंटा) गाड़कर ध्वज के शिखर से लटकती हुई आठ रस्सियों को इनमें बाँधा जाता है। ये आठ रस्सियाँ आठ दिक्पालों द्वारा धारित होती हैं-

यथादिशं च रज्ज्वष्टौ मौञ्जीस्त्रग्दामसंहिताः।
निग्रहार्थं ध्वजे कार्या निबद्धाश्चेन्द्रमण्डले।।

बृहत्संहिता, इन्द्रध्वजसम्पद्, अध्याय ४२, श्लोक ५८

इनके अतिरिक्त प्रधानरस्सी ध्वज पट से जुड़ी हुई ध्वज के निचले आधार तक आती है। इन सभी आठ रस्सियों पर पुष्पाक्षत से पूजन करते हुए मंत्र बोला जाता है- प्राच्यां इन्द्राय नमः। अग्निकोणे अग्नये नमः। दक्षिणे यमाय नमः। नैर्ऋत्यां निऋतये नमः। प्रतीच्यां वरुणाय नमः। वायव्यकोणे वायवे नमः। उत्तरस्यां कुबेराय नमः। ईशानकोणे ईशानाय नमः। ध्वजोत्तोलन करते समय यदि रस्सी टूटती है तो राजभंग का भय उत्पन्न होता है। प्रायशः ध्वजदण्ड तुल्य रज्जु (रस्सी) का प्रयोग ध्वजोत्तोलन में होता रहा है। मुञ्ज या सना की रस्सी अथवा यज्ञकर्म में प्रयुक्त होने वाली रस्सी का प्रयोग ध्वज उत्थान में किया जाता है। रस्सी को पुष्प रंग से रंग कर चित्र-विचित्र-सुन्दर किया जाता है।

ध्वज सज्जा-

ध्वज से सम्बन्धित सभी अङ्गों को सुसज्जित किया जाता है। ये अङ्ग हैं- ध्वजदण्ड, ध्वजांशुक, ध्वजरज्जु, ध्वजपीठ, ध्वजपरिधि, ध्वजभूमि एवं ध्वजपरिचारक। इन सात अङ्गों को सजाकर शुभ, सुंदर्शन और मनोहारी बनाया जाता है। ध्वजदण्ड सज्जा का उल्लेख हो चुका है। ध्वजांशुक में कपड़े के फुलगेंदे लटकाये जाते हैं। छोटी किंकिणियाँ बाँधी जाती हैं। ध्वज फहरते समय इनसे रून-झुन की मनोहारी स्वरलहरी निकलती है-

स किङ्किणी जालपरिष्कृतेन स्त्रक्छत्रघण्टापिटकान्वितेन।

बृहत्संहिता, इन्द्रध्वजसम्पद्, अध्याय ४२, श्लोक ७

ध्वजरज्जु को पुष्परंग एवं इत्र आदि से सजाया जाता है। ध्वजपीठ को वृत्ताकार बनाकर अल्पना से सुसज्जित किया जाता है। ध्वजपरिधि के भीतर ध्वजपीठ होता है। इस परिधि में राजा, ध्वजपूजक और राजसत्ता एवं परिवार से सम्बन्धित जन होते हैं। अत: ध्वजपरिधि को सुन्दर पुष्पों से सुशोभित किया जाता है। ध्वजभूमि दर्शक दीर्घा को कहते हैं। नागरजन ध्वजभूमि में बैठकर ध्वजोत्तोलन के दिव्यदृश्य को देखते हैं। ध्वजपरिचारक तिलक, माला, आभूषण, सुन्दर वस्त्र, पगड़ी, उत्तरीय, पदत्राण आदि से युक्त होते हैं। प्राचीन काल में इनका वेश एक जैसा होता था। आज राज्यों की संस्कृति के अनुकूल इनका वेश होता है जो शुभ और शास्त्रविहित है।

ध्वजोत्तोलन मुहूर्त्त-

वैदिक रीति से ध्वजोत्तोलन को द्वादशी तिथि एवं श्रवण नक्षत्र के योग में करना चाहिए। ध्वजोत्तोलन दिन में ही करना चाहिए। यह मुहूर्त्त अतिप्रशस्त और अपूर्व प्रभाव उत्पादक होता है। गर्ग मुनि के अनुसार ध्वजोत्तोलन का सर्वश्रेष्ठ मुहूर्त्त श्रवण और द्वादशी का योग ही होता है-

तत्र श्रवणयोगेन ध्वजोत्थापनं प्रशस्यते।
द्वादश्यां विजये वाश्वमुहूर्त्ते वा दिनेऽथवा।।

बृहत्संहिता, इन्द्रध्वजसम्पद्, अध्याय ४२, श्लोक ३८.

ध्वजोत्तोलन से पूर्व राष्ट्राध्यक्ष द्वारा पुष्पाक्षत समर्पित करते हुए निम्नलिखित देवों का स्मरण करना चाहिए- विश्वकर्मा, शिव, इन्द्र, यम, वरुण, वायु, कार्तिकेय, अग्नि, सूर्य, त्वष्टा, विश्वेदेव, सप्तर्षि, गुरु एवं शुक्र। पुष्पाक्षत समर्पण करते समय बोलना चाहिए- विश्वकर्मणे नमः, शिवाय नमः, इन्द्राय नमः आदि। **ध्वज को द्वादशी से पूर्णिमा पर्यन्त फहरने देना चाहिए।**

राजा या राष्ट्राध्यक्ष जब ध्वजोत्तोलन करे तब शांतिसूक्त एवं विजय सूक्त का पाठ ध्वजपरिधि में करना चाहिए। कतिपय पद्धतियों में १०८ कलश के पवित्र जल से ध्वजमूल के अभिषेक करने की परम्परा प्राप्त होती है। समराङ्गण सूत्रधार के अनुसार ८ कलश के जल से ध्वजमूल का अभिषेक करना चाहिए। ध्वज फहराते समय प्रार्थना की जाती है-

ॐ नमो भगवति वागुले सर्वविटपप्रमर्दनि स्वाहा।
सुरासुराणां संग्रामे प्रवृत्ते त्वं यथोत्थितः।
तथा नृपस्य देवेन्द्र! जयायोत्तिष्ठ पूजितः।।

समराङ्गणसूत्रधार, १७/१३७

(हे भगवति! वागुले! आप सभी वृक्षों को प्रमर्दित करने वाली इस ध्वजदण्ड में निवास करने वाली शक्ति हैं। देवासुर संग्राम में जिस तरह से आपने देवराज इन्द्र को विजय दिलाई थी, उसी तरह से हमारे राजा को विजयश्री प्रदान करें। हमं सभी ने आपका पूजन किया है अतः हमारी विजय के लिए आप सन्नद्ध हों।)

ध्वजोत्तोलन-

ध्वज-फहराना संस्कृत के अनेक पदों (शब्दों) से सम्बोधित होता है जैसे- ध्वजोत्तोलन, ध्वजारोहण, ध्वजोत्थान, ध्वजसमुत्थान, ध्वजोन्नयन, ध्वजोत्थापन, ध्वजोच्छ्राय। ध्वज को फहराने की एक अतिविशिष्ट वैदिक प्रक्रिया होती है। इस प्रक्रिया को विधिविधान से करने पर राष्ट्र का उत्थान एवं विस्तार होता है। **ध्वज राष्ट्र को विजय दिलाने हेतु दैवी चमत्कार प्रस्तुत करता है। ध्वजोत्तोलन को केवल राष्ट्रशक्ति प्रदर्शन या राष्ट्र स्वतन्त्रता स्मरण का स्मारक नहीं समझना चाहिए।**

ध्वज को फहराते समय वेदमंत्र उद्घोष करते हुए वाद्य बजाया जाता है। आज भी ध्वज फहराते समय वाद्य बजाया जाता है। ध्वज फहराते समय जयध्वनि करते हुए मृदंग-पणव-शंख-ढक्का (ढाक)-दुन्दुभि-करट-वीणा-बंसी प्रभृति वाद्यों को बजाया जाता है।

इस ध्वज का विधिपूर्वक अनेक वेदमंत्रों के द्वारा चन्दन, पुष्प, माला, धूप, दीप, नैवेद्य से अर्चन किया जाता है। ध्वज पर श्रीफल, नारियल, दधि, गोघृत, लावा एवं पुष्प चढ़ाकर पूजन किया जाता है।

प्राचीन काल में ध्वज फहराते समय इन्द्र ध्वज की जय, देवध्वज की जय तथा भगवा ध्वज की जय का उद्घोष किया जाता था-

ततो मङ्गलघोषेणवादित्रनिनदेन च।
पुण्याह-जयशब्दैस्तमुत्क्षिपेयुः समाहिताः।।

समराङ्गणसूत्रधार, १७/६६

प्राचीनकाल में ध्वज को जब ध्वजस्थान पर लाकर ध्वजपीठ में स्थापित किया जाता था तब ध्वज के पीछे राजा, मंत्री, सेना और नगरवासी चलते थे। प्राचीन काल में बलिष्ठ पुरुषों द्वारा ध्वज को स्थापित किया जाता था। आज ध्वज कब स्थापित कर दिया जाता है यह पता ही नहीं चलता?

ध्वज फहराने वाले राष्ट्रपति या राजा को सफेद वस्त्र धारण करना चाहिए। स्व अभिरुचि का वस्त्र या विविध रङ्ग का वस्त्र धारण कर ध्वज फहराने से अपूर्व प्रभाव में कमी आती है। ध्वजोत्तोलक को सिर पर पगड़ी बाँधनी चाहिए। खुले सिर ध्वजोत्तोलन नहीं करना चाहिए। प्राचीन काल में ध्वज उत्थान के बाद हवन अवश्य होता था। अग्नि और अग्नि से उत्पन्न ध्वज का विशेष सम्बन्ध होने के कारण शुभ अवसरों पर ध्वजोत्तोलन के पश्चात् हवन अवश्य होता था। राजा एवं नगरवासी फहरते हुए ध्वज की प्रदक्षिणा करते थे।

बन्दीमोचन का अवसर-

ध्वज फहराने के पश्चात् राजा अनेक बंदियों को कारागार से मुक्त करता था। उन्हें वस्त्र आदि देकर सम्मानपूर्वक समाज में प्रवेश करने

का अवसर प्रदान करता था। समस्त राष्ट्र और जनपद में १० दिनों तक दोषपरीक्षापूर्वक दोषियों को कारागार एवं बन्धन से मुक्त किया जाता था-

कुर्वीत सर्वबन्धानां मोक्षं हिंसां समुत्सृजेत्।
दोषान् जनपदस्यापि दशाहं विषहेत वै।।

समराङ्गणसूत्रधार, १७/१३४

ध्वज शकुन-

ध्वज फहराने के बाद ध्वज शकुन का विचार किया जाता है। यदि ध्वज शुभ एवं सुन्दर वातावरण में अकम्पित हो अथवा स्वल्प स्पन्दित हो तो राष्ट्र एक वर्ष पर्यन्त सुखी रहता है।

ध्वज फहरने के तत्काल बाद यदि मांसाहारी पक्षी उसके ऊपर उड़ने लगें अथवा उल्लू, कबूतर, कौआ, गिद्ध, चील आदि मंडराने लगें या ध्वज पर बैठ जायें तो राजा के लिए महान् भय उत्पन्न होता है। यदि चाष पक्षी बैठे तो युवराज को भय उत्पन्न होता है। वाज (श्येन) बैठे तो राष्ट्र में नेत्र कष्ट बढ़ता है।

ध्वजोत्तोलन के समय उल्कापात, विद्युत्पात हो तो क्रमशः पुरोहित और प्रधानस्त्रियों सहित महारानी को कष्ट होता है। ध्वज टूट कर गिरे तो राजा के जीवन पर संकट उत्पन्न होता है। यदि ध्वज के मध्य में छिद्र हो जाये या ध्वज फट जाये तो मन्त्रियों के जीवन पर संकट आता है। यदि ध्वज फहराते समय रस्सी टूट जाये तो राष्ट्र में बालकों को कष्ट होता है।

यदि ध्वज पूर्व दिशा की ओर फहरता हो तो मंत्री गणों का विकास होता है। यदि ध्वज अग्निकोण की ओर फहरता हो तो राष्ट्र में अग्नि से सम्बन्धित कर्म का विकास होता है। यदि ध्वज दक्षिण दिशा की ओर फहरे तो वैश्यजनों की वृद्धि होती है तथा देश में सम्पन्नता बढ़ती है। यदि ध्वज नैर्ऋत्यकोण की ओर फहरे तो राष्ट्र की समस्त आशायें पूर्ण होती हैं साथ ही देश में रोग आदि नहीं उत्पन्न होते हैं। यदि ध्वज पश्चिम दिशा की ओर फहरे तो लोकमंगलकारी होता है। पर्याप्त वृष्टि से देश का विकास होता है। वायव्य कोण में ध्वज के फहरने से पशुओं का

संवर्द्धन होता है। यदि ध्वज उत्तर दिशा की ओर फहरे तो राष्ट्र के समस्त नागरिक सुखी और सम्पन्न होते हैं। राष्ट्र एक वर्ष के लिए अभ्युदय प्राप्त करता है। यदि ध्वज ईशानकोण की ओर फहरे तो राजा, राज्य एवं धर्म का पक्ष उन्नति प्राप्त करता है।

यदि रस्सी खीचने पर ध्वज बीच में स्थित हो जाये या पूर्ण रूप से न खुले तो राजपरिवार को कष्ट होता है। यदि ध्वजदण्ड प्रकम्पित होने लगे तो राजा को पीड़ा होती है।

ध्वज की आठो रस्सियों में से यदि कोई एक भी रस्सी टूटे तो मंत्री आदि का विनाश होता है। ध्वजदण्ड मूल, मध्य या अग्र भाग में टूटे तो राष्ट्र को महती हानि पहुँचती है। ध्वजसज्जा में लगी हुईं मालायें, तारिकायें, सीसे या किंकिणियाँ टूटकर भूमि पर गिरें तो राजमंत्री मण्डल की स्त्रियों को नेत्र सम्बन्धित पीड़ा होती है।

फहरते हुए ध्वज पर यदि मधुमक्खियाँ भारी मात्रा में स्थित हों तो देश या नगर के ऊपर शत्रु आक्रमण करता है। ध्वज के चतुर्दिक् पक्षी एवं मधुमक्खियों का परिभ्रमण करना अशुभ संकेत होता है।

यदिं ध्वज के ऊपर मयूर या हंस आकर बैठ जाये तो राजपरिवार में समस्त शुभलक्षणों से युक्त युवराज की प्राप्ति होती है। यद्यपि ये सभी लक्षण राजा से सम्बन्धित हैं तथापि आज के युग में भी तत्कालीन राष्ट्राध्यक्ष एवं मंत्रीपरिषद् के लोगों के ऊपर ये समस्त घटनायें घटित होती हैं।

ध्वजोत्तोलन के समय यदि वृष्टि होने लगे अथवा मेघ गर्जना करने लगे अथवा बिजली चमकने लगे तो राजा और प्रजा का सर्वविध कल्याण होता है-

सतडिद्-गर्जिताम्भोदा वृष्टिश्चेज्जायते तदा।
महीपतेर्जयं विद्यात् सुभिक्षं क्षेममेव च।।

समराङ्गणसूत्रधार, १७/१९६

ये समस्त ध्वज शकुन समराङ्गण सूत्रधार एवं बृहत्संहिता से संग्रहीत हैं।

ध्वज विसर्जन-

प्रतिपदा के दिन राजा या उसके प्रतिनिधि के समक्ष ध्वज का विसर्जन करना चाहिए-

दिनचतुष्टयमुत्थितमर्चितं
समभिपूज्य नृपोऽहनि पञ्चमे।
प्रकृतिभिः सह लक्ष्म विसर्जयेद्
बलभिदः स्वबलाभिविवृद्धये।।

बृहत्संहिता, इन्द्रध्वजसम्पद्, अध्याय ४२, श्लोक ६.७

ध्वजोत्तोलन के बाद इसे अर्द्धरात्रि में उतारने का विधान प्राप्त होता है। समराङ्गणसूत्रधार के अनुसार ध्वज को दसवें दिन उतारना या विसर्जित करना चाहिए। यदि रोहिणी नक्षत्र में ध्वज उतारा जाये तो यह अत्यधिक शुभकारी होता है। ध्वज हटाने के बाद ध्वजमूल की भूमि का शुभजल, गंध एवं पुष्प से सिंचन करना चाहिए।

ध्वज परम्परा-

महाभारत काल से लेकर ११वीं शताब्दी के मध्य तक ध्वज फहराने की प्रक्रिया अलग-अलग देशों एवं जनपदों में अलग-अलग थी। ध्वजोत्तोलन राष्ट्र की विजय के लिए एक अनुष्ठानिक प्रक्रिया थी। आज इस प्रक्रिया का ज्ञान लुप्त हो गया है और आधुनिकता के नाम पर केवल ध्वजोत्तोलन करना ही दिखलाई दे रहा है। इन दिनों न तो ध्वज का पूजन होता है न ही ध्वज का विसर्जन। ध्वजोत्थान में किसी भी प्रकार का शुभाशुभ का विचार नहीं रह गया है। अंग्रेजों की संस्कृति में मंत्र एवं अनुष्ठान न होने के कारण उन्होंने ध्वजोत्तोलन को सादे समारोह के साथ सम्पन्न करने की परम्परा को आगे बढ़ाया। यद्यपि ध्वज से सम्बन्धित समस्त दृष्टियों को उन्होंने भारतवर्ष से ही लिया परन्तु आज भारतवर्ष अपनी मौलिक प्रक्रिया को भूल चुका है। यही कारण है आज झण्डा फहराते समय बाजे बजते हैं, जल, थल, नभ के सैनिकों से सलामी ली जाती है, सैन्य प्रदर्शन होते हैं, अस्त्र-शस्त्र प्रदर्शित किये जाते हैं पर श्रेष्ठ आचरण वाले बन्दी कारागार से मुक्त नहीं किये जाते। ध्वज परिसर में मयूर और हंस नहीं पाले जा रहे हैं। कबूतर आदि अशुभ पक्षी स्वतः ध्वजस्थान के समीप आ जाते हैं।

श्रेष्ठतम राजचिह्न है राष्ट्रध्वज-

राजा एवं राष्ट्र के लिए अनेक श्रेष्ठतम प्रतीक वस्तुओं में राष्ट्रध्वज सर्वोपरि होता है। राष्ट्र के प्रतीकों को अदेय कहा गया है। इन प्रतीकों में राजसिंहासन, छत्र, चामर, राजदण्ड, राजमुकुट, राजमणि, राजरत्न, रत्नमाला एवं राष्ट्रध्वज अपना विशेष महत्त्व रखते हैं। इन प्रतीकों में राजमणि, राजरत्न और रत्नमाला राजा चाहे तो दान में दे सकता है या मैत्रीस्थापना में उपहार स्वरूप दे सकता है परन्तु राजसिंहासन, राजमुकुट, छत्र, चामर और राष्ट्रध्वज हमेशा अदेय होते हैं। इन राष्ट्र प्रतीक वस्तुओं पर राजा का अधिकार नहीं होता है। राजा इनकी रक्षा के लिए होता है। महाकवि कालिदास ने महाराज रघु के लिए लिखा है- वे दान में अपना सर्वस्व लुटा देते थे। उनके लिए एक छत्र और दो चामर जो तीन राजचिह्न माने जाते हैं अदेय थे- **अदेयमासीत् त्रयमेवभूपतेः शशिप्रभं छत्रमुभे च चामरे।** ध्येय है कि महाकवि कालिदास ने छत्र और चामर का रंग शशिप्रभ अर्थात् श्वेत वर्ण का बतलाया है। जिस प्रकार से ध्वज अग्निवर्ण का होता है उसी प्रकार से छत्र और चामर श्वेत वर्ण के होते हैं। अग्निवर्ण (भगवा) ध्वज ही सृष्टि का श्रेष्ठतम ध्वज है। राजसिंहासन, छत्र-चामर और राष्ट्रध्वज किसी राष्ट्र की अस्मिता होते हैं। इनके नष्ट होते ही राष्ट्र नष्ट हो जाता है। राजसिंहासन, छत्र और चामर पृथ्वी के अंश हैं। ये पृथ्वी से उत्पन्न होकर पृथ्वी पर विराजमान् रहते हैं। राष्ट्रध्वज अग्नि का अंश है और यह अंतरिक्ष में लहराते हुए राष्ट्र के गौरव की स्थापना का जयघोष करता है। अतः सर्वश्रेष्ठ या श्रेष्ठतम राष्ट्र चिह्न है- राष्ट्रध्वज। ध्वजदण्ड में जड़ी हुई मणियाँ राजा को विजय दिलाती हैं। इन्हीं मणियों के प्रभाव से देवराज इन्द्र ने विजय प्राप्त की थी और अपने राष्ट्र का संवर्धन किया था-

अभीवर्तेन मणिना येनेन्द्रो अभिवावृधे।
तेनास्मान् ब्रह्मणस्पतेऽभि राष्ट्राय वर्धय।।

अथर्ववेद, काण्ड १, सूक्त २९, मन्त्र १

ध्वज परिसर में वृक्ष-लतायें-

ध्वज परिसर में चन्दन, आम्र, कटहल, जामुन, मधूक (महुआ), पीलु, अक्षोट (अखरोट), उद्दालक (लसोड़ा), नागरंग (नारंगी), श्रीपर्णी,

श्रीफल, लीची, नारियल, कल्पवृक्ष, साल, धव, अर्जुन, देवदारु, अश्वत्थ (पीपल), प्लक्ष (पाकड़), वट (बरगद), कपित्थ (कैंत), उदुम्बर (गूलर), कोविदार (कचनार), अमलतास, सप्तपर्ण (छितवन), मौलश्री (बकुल), निम्ब (नीम), मन्दार, अशोक, आम्रातक (आँवड़ा) आदि के श्रेष्ठतम वृक्ष होने चाहिए। मधु-मालती-लता-यूथिका आदि सौगन्धिक लतायें होनी चाहिए। इन श्रेष्ठ वृक्षों एवं लताओं से ध्वज परिसर की दिव्यता अपूर्व हो जाती है। इनके दर्शन मात्र से प्रजा में आह्लाद और गौरव की अनुभूति होती है।

हंसों का देश भारत-

भारतवर्ष हंसों का देश है। सूर्य ब्रह्माण्ड अन्तरिक्ष का हंस है। ध्वज राष्ट्र अन्तरिक्ष का हंस है। तपस्वी व्यक्ति समाज का हंस होता है। राष्ट्र मार्गदर्शक सिद्ध व्यक्ति परमहंस होता है। इस देश में राजाओं एवं सम्राटों ने अपनी वावलियों में हंसों को हमेशा पाला। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद हम मानसरोवर और हंस दोनों को भूल बैठे। ऋषियों द्वारा ऋग्वेद में गायी गयी हंसवती ऋचा को हम भूल बैठे। यह देश हंसों को पूर्णरूप से विस्मृत करता जा रहा है। हंस संस्कृति की रक्षा करनी होगी।

ध्वजदिवस पर करणीय-

आज आवश्यकता है हम अपने राष्ट्र ध्वज, हंस, वृक्ष, लता, संगीत, संस्कृति, योग, आयुर्वेद, धनुर्वेद, दिव्यास्त्र, स्वर्णमुद्रा, कामधेनु गाय, श्रेष्ठ अश्व-गज-सिंह आदि की संरक्षा करें। हमें समुद्रविजय; नभ दोहन और वसुन्धरा प्रतिपालन की दिशा में प्राचीन और नवीन माध्यमों का उपयोग करना ही होगा। सैनिक सीमा की रक्षा करें। प्रधानमंत्री राष्ट्र की नीतिगत रक्षा करें। विद्वज्जन विद्या की साधना करें। कलाविद् कला देवी की उपासना करें। कृषक प्रसन्न मन बहुविध अन्न उत्पन्न करें तभी यह शाश्वत राष्ट्र अहरहः अभ्युदय पथगामी हो सकेगा। ध्वज दिवस पर राष्ट्राध्यक्ष के द्वारा राष्ट्र के श्रेष्ठतम नागरिकों का उनके असाधारण गुणों के आधार पर सम्मान किया जाना चाहिए।

राष्ट्रयज्ञ की आवश्यकता-

दशहरा जैसा पर्व जो राष्ट्र की सुरक्षा एवं विजय से सम्बन्धित था आज केवल रामलीला के प्रदर्शन तक सिमट गया है। नौदिवसीय

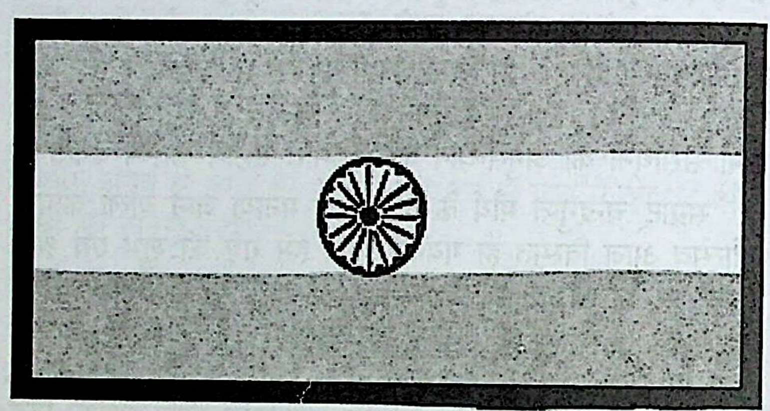
शक्तिसमाराधना के द्वारा होने वाले राष्ट्रीय सम्भूय समुत्थान हेतु यज्ञ करना हम भूल गये हैं। हम भूल गये हैं कि राष्ट्रगुरु दतिया स्वामी ने सन् १९६२ में यज्ञ के माध्यम से चीन के आक्रमण से भारतवर्ष को बचाने का काम किया था। जिस हविष्य के बल से ऋषियों ने राष्ट्र और जन को सुरक्षित रखा उसका ज्ञान आज विस्मृत हो गया है। पुनः इन सभी संसाधनों का अनुसन्धान करना हमारा राष्ट्रीय कर्तव्य बनता है।

सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य के काल तक मनाया जाने वाला कौमुदी महोत्सव आज विस्मृत हो गया है। यदि हम राष्ट्र की शुभ एवं श्रेष्ठ परम्पराओं को छोड़ते चले जायेंगे तो एक दिन हम जिस परम्परा का निर्वाह कर रहे हैं उसे आने वाली पीढ़ी विस्मृत कर देगी। राष्ट्र की श्रेष्ठ परम्परायें हमेशा जीवित रहें इसका प्रबन्धन होना चाहिए। ध्वजोत्तोलन के अवसर पर यदि पद्मश्री, पद्मभूषण, भारतरत्न आदि सम्मान दिये जाते हैं तो इस अवसर पर श्रेष्ठ आचरण करने वाले परीक्षित बन्दियों को कारागार से मुक्त करने की परम्परा भी जीवित होनी चाहिए। अपनी भूली हुई श्रेष्ठ परम्परा को यदि हम पुनर्जीवित करते हैं तो यह राष्ट्र के लिए क्षेमकारी होता है।

ध्वजगान/ राष्ट्रगान-

ध्वजोत्तोलन के पश्चात् ध्वजगीत या राष्ट्रगीत गाने की परम्परा प्राचीन काल से चली आ रही है। अति प्राचीन काल में ध्वजोत्तोलन से पूर्व महर्षि, सिद्धसंघ एवं वैदिक गण शांतिसूक्त तथा विजयसूक्त का पाठ करते थे। विजय सूक्त का पाठ अनिवार्य रूप से किया जाता था। ध्वजोत्तोलन के पश्चात् ध्वजप्रदक्षिणा और प्रजा द्वारा ध्वजपूजन किया जाता था। राष्ट्राध्यक्ष द्वारा ध्वजपूजन करने के पश्चात् ध्वजोत्तोलन किया जाता था। ध्वजोत्तोलन के बाद सामान्यजन दर्शन हेतु ध्वजस्थान को सुरक्षापूर्वक अनावृत (खुला) कर दिया जाता था। १७वीं से २०वीं शताब्दी के बीच अनेक सभ्यता एवं संस्कृतियों वाले देशों ने अपने-अपने राष्ट्र के लिए गीत लिखे। ये गीत ध्वजोत्तोलन के पश्चात् गाये जाते हैं। भारतवंशी राष्ट्राध्यक्षों ने अपनी सांस्कृतिक पराभव को स्वीकार करते हुए शांतिपाठ और विजयसूक्त पाठ का परित्याग कर दिया। जिन देशों के पास मंत्र ही नहीं थे वे मन्त्र पाठ कैसे कर सकते थे? परन्तु हमने अपने विजयसूक्त का परित्याग करके राष्ट्र विजय को किनारे कर दिया-

भारतवर्ष का राष्ट्रगान



जन-गण-मन अधिनायक जय हे
भारत-भाग्य-विधाता।
पंजाब सिन्ध गुजरात मराठा
द्राविड़ उत्कल बंग।
विन्ध्य हिमाचल यमुना गंगा,
उच्छल जलधि तरंग।
तव शुभ नामे जागे,
तब शुभ आशिष माँगे;
गाहे तव जय गाथा।
जन-गण मंगलदायक जय हे,
भारत-भाग्य-विधाता।
जय हे, जय हे, जय हे,
जय जय जय, जय हे।।

राष्ट्र के लिए वरदान माँगता हूँ

विश्वेदेव; सविता; पवमान माँगता हूँ
राष्ट्र के लिए वरदान माँगता हूँ।।

मन में ऋषित्व; घोर बल में वलिवर्द हों
तप में प्रदीप्त सूर्य; जग में यशस्विता;
नभ में हो शान्त स्वर; गति में प्रवेग हो;
धन-धान्य पूर्ण मही; भावना हो गर्विता,

सृष्टि में स्पन्द का अवदान माँगता हूँ
राष्ट्र के लिए वरदान माँगता हूँ।।

विश्व का विकास हो; नैतिक प्रकाश हो;
आत्मरूप तन्तु में सत्य का निवास हो;
उषा व संध्या हो; कामना न वंध्या हो;
स्वस्तिमती भूमि पर ज्ञान का उजास हो,

राजा में तेज का आधान माँगता हूँ
राष्ट्र के लिए वरदान माँगता हूँ।।

तत्त्वों का ज्ञान हो; बल का अनुमान हो;
गुण का सम्मान हो राष्ट्र की परम्परा;
प्राची प्रशस्त हो; शत्रु शैन्य ध्वस्त हो;
राक्षसों के वक्ष पर जयिनी हो अपरा,

सारथी के रूप में भगवान् माँगता हूँ
राष्ट्र के लिए वरदान माँगता हूँ।।

घर में ऐश्वर्य हो; धरती पर धान्य हो;
सिद्धि-प्रसिद्धि हो; ओज हो; सम्मान हो;
धैर्य हो; क्षेम हो; गरिमा हो; ज्ञान हो;
भूत और भविष्य की अग्रिम पहचान हो,

सर्वश्रेष्ठ नाभिक विज्ञान माँगता हूँ
राष्ट्र के लिए वरदान माँगता हूँ।।

स्वस्ति हो; शान्ति हो; पृथिवी हो; धाता हो;
लहरें हो; नदियाँ हों; भय का त्राता हो;
यज्ञ हो; दान हो; लक्ष्य का संधान हो;
धरती अखण्ड हो; कामधेनु माता हो,

द्रोणकलशपूर्ण सप्तधान्य माँगता हूँ
राष्ट्र के लिए वरदान माँगता हूँ।।

नूपुर हो; वीणा हो; वज्र-ब्रह्मास्त्र हो;
शत्रु के कूट का पूर्व से आभास हो;
संयम; समाधि और सत्य का विकास हो;
कुत्सा; पराभव व दैन्य का विनाश हो,

वसु; रुद्र; इन्द्र से कल्याण माँगता हूँ
राष्ट्र के लिए वरदान माँगता हूँ।।

सिंदूर; सौभाग्य हो, चैत्र हो; फाग हो;
आत्मदीप जलता हो; अंधकार ना घिरे;
हंस हो; कोयल हो; मेघ हो; विहाग हो;
साधु की कामना पर कभी वज्र ना गिरे,

आज नीलकण्ठ का विष पान माँगता हूँ
राष्ट्र के लिए वरदान माँगता हूँ।।

भारतीय विद्याओं एवं सनातन संस्कृति की संवाहिका

अखिल भारतीय विद्वत् परिषद्

इस सनातन राष्ट्र की आस्था, श्रद्धा, विश्वास, चित्तवृत्ति एवं अजस्र धर्म प्रवाह को विस्तार देने हेतु विद्वत् परिषद् के प्रकाशन-

❖

'भारतवर्ष'

❖

'व्रत-पर्व-महोत्सव पत्रिका'

❖

'इतिहास का उपहास'

❖

'श्रीमहामृत्युञ्जयमंत्रसाधना'

❖

नववर्ष अभिनन्दन-पत्र

❖

'यद्वा' शोध पत्रिका

❖

ध्वज का इतिहास

अखिल भारतीय विद्वत् परिषद्

www.vidvatparishad.org

अखिल भारतीय विद्वत् परिषद्

www.vidvatparishad.org



ग्यारहवीं शताब्दी का अष्ट रज्जु युक्त ध्वज